'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार–मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक ४ | वाराणसी, गुरुवार, ८ जनवरी, १९५९ | पचीस रुपया वार्षिक

हरिजन-कार्यकर्ताओं के बीच

पड़ाव : सर्वोदय-आश्रम, पालम दिनांक : २७-१२-'५८

हरिजन-सेवा में संकुचितता न करें

गुजरात में हरिजन-सेवा का कार्य लगभग ४० वर्षों से सतत चल रहा है। गांधीजी ने आने के बाद इस काम को बहुत ही आगे बढ़ाया।

हरिजन-आन्दोलन सौ वर्ष पुराना

आप जानते ही हैं कि इस काम के लिए बापू ने मामासाहब फड़के को विशेष रूप से गोधरा भेजा था। लेकिन उससे पहले लगभग ३०-४० वर्षों से यह काम अन्य लोग भी करते रहे। स्वामी दयानन्दजी गांधीजी से भी पहले लगभग ३० वर्ष से इस काम पर काफी जोर देते और भारत में जगह-जगह कहते कि "वैदिक धर्म में अस्पृश्यता को कतई स्थान नहीं। यदि उसका निवारण न किया जायगा तो हिन्दू-धर्म टिक नहीं सकेगा।" इसी तरह बंगाल में राजा राममोहन राय ने भी छूत-अछूत का भेद मिटाना शुरू कर दिया था। इस तरह लगभग १०० वर्षों से यह आन्दोलन चला आ रहा है और गुजरात में ७०-७५ वर्षों से चल रहा है। अखिल भारतीय धर्म-सुधार के आन्दोलन में गुजरात की ओर से दयानन्द और गांधीजी ये दो नाम समर्पित हुए हैं। आज के जमाने में जिन लोगों ने हिन्दू-धर्म को कुछ नया स्वरूप दिया है, उनमें स्वामी दयानन्द सरस्वती और गांधीजी, विवेकानन्द और टैगोर तथा तिलक और अरविन्द, ये ही छह नाम अत्यन्त महत्त्व के हैं। इस तरह स्पष्ट है कि यह काम आज का नहीं, लगभग १०० वर्ष का है और बहुत से महापुरुषों ने उसे आगे बढ़ाया है।

हरिजनों की उन्नति भी जरूरी

स्वराज्य प्राप्त होने के बाद अब अस्पृश्यता के दिन गिने-गिनाये रह गये हैं। अब वह टिक नहीं सकती, यह सर्वथा सुनिश्चित है। मैं आप लोगों को इस बारे में निश्चिन्त कर देना चाहता हूँ। आज तो जमाना ही आपके साथ है और पुराने विचारों के विरुद्ध है। इसलिए आप निश्चिन्त हो जायँ कि आप सफल होकर रहेंगे। किन्तु इसके साथ-साथ मैं आपको जागृत भी करना चाहता हूँ। वह यह कि अस्पृश्यता मिटने के साथ ही जिन बातों पर ध्यान देना चाहिए, उनपर आप सावधानी के साथ ध्यान दें। अगर आप उनपर ध्यान न दें तो अस्पृश्यता तो मिट जायगी, लेकिन हरिजनों की उन्नति नहीं होगी। मन्दिरों में तो हरिजनों को प्रवेश प्राप्त हो जायगा, फिर भी वे उन्नति से वंचित ही रहेंगे। हरिजनों को अस्पृश्य न माना जाय, यह तो पुरानी बात हो गयी। उसपर तो अमल होगा ही। उसकी विशेष चिन्ता नहीं। चिन्ता इसी बात की है कि अस्पृश्यता मिटने के बावजूद हरिजनों की उन्नति न हो।

आज हरिजन-सेवा एकाङ्गी क्यों ?

प्रश्न : "हरिजन-सेवा का आज जो काम चल रहा है, उसे आप एकांगी कहते हैं। फिर वह सर्वाङ्गीण कैसे हो सकता है ? क्या 'हरिजन-सेवा-संघ' तोड़ दिया जाय ?"

विनोबा : हरिजन-सेवा के चार पहलू हैं : (१) सवर्ण हरिजनों का काम सवर्णों में करें। (२) सवर्ण वह काम हरिजनों में करें। (३) हरिजन वह काम सवर्णों में करें। (४) हरिजन वह काम हरिजनों में करें। यदि हम यह विचार करें कि इन चार कामों में से कौन-सा काम हमने अपने हाथ में लिया है और कौन नहीं तो ध्यान में आ जायगा कि इसे हम एकांगी क्यों कहते हैं।

हरिजन हरिजनों के बीच क्या करते हैं ?

क्या आज हरिजन हरिजनों के बीच शुद्धि-काम कर रहे हैं ? क्या वे अपनी अवान्तर जाति-पाँतियों को मिटा देने का काम करते हैं ? उनमें सबसे नीच भंगी माने जाते हैं। क्या उन्हें उठाने का काम वे कर रहे हैं ? क्या उनमें रहनेवाले व्यसनों को मिटाया जा रहा है ? उनमें सार्वजनिक सेवा की वृत्ति उत्पन्न कर क्या ऐसा कुछ काम चल रहा है, जिससे उनके बीच से अखिल भारतीय नेता निकल सकें ? आज तक तो हरिजनों में ऐसा एक ही नेता मिल पाया और वे थे श्री अम्बेडकर। आरंभ में तो वे हरिजनों के ही नेता थे। लेकिन अन्त में वे भारत के नेता बन गये। उनका प्रभाव सवर्णों पर भी पड़ता था। क्या हरिजनों में ऐसे ही अन्य नेता तैयार करने की, जो सवर्णों पर भी अपना असर डाल पायें, कोशिश चल रही है ? यह बात हुई, हरिजनों में काम करने वाले हरिजन-कार्यकर्ताओं की।

सर्वाङ्गीण सेवा कब होगी ?

इसके बाद देखा जाय कि सवर्ण हरिजनों के बीच क्या काम करते हैं। इस पर विचार करें तो ध्यान में आ जायगा कि हमारा काम बड़ा अत्यधिक एकांगी हो गया है। सर्वाङ्गीण काम हुआ, यह तभी कहा जायगा, यदि हरिजनों को हरिजन ही न कहना पड़े। देश के सभी पिछड़े लोगों की सेवा के बीच उनकी भी सेवा हो जाय। ऐसी व्यापक दृष्टि रखें, तभी वह सच्ची हरिजन-सेवा मानी जायगी। यदि हम ऐसा संकुचित हृदय रखें कि हम तो हरिजनों की ही सेवा करेंगे, औरों की नहीं तो उसे सच्ची हरिजन-सेवा नहीं कहा जायगा।

बापू की बातों को प्रमाण रूप में पेश कर यदि हम आज का कर्तव्य तय करें तो वह ठीक नहीं। हमें अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से आज की परिस्थिति के अनुसार ही कोई निश्चय करना चाहिए। फिर भी उनके जीवन से कुछ आवश्यक बातें लें तो भी उसमें कोई अनुचित नहीं। ◆◆◆

शिक्षकों और छात्रों के बीच

पड़ाव : हरिजन-आश्रम, साबरमती, अहमदाबाद-१३ दिनांक : २१-१२-'५८

राजनीति से ऊपर उठकर व्यापक विचार करें

साधारणतः अन्य व्याख्यानों के लिए अध्यक्ष चुना जाता है। लेकिन मेरे व्याख्यान के लिए अध्यक्ष की आवश्यकता नहीं पड़ती। कारण जिस-जिस सभा में मैं बोलता हूँ, वहाँ गांधीजी अव्यक्त रूप में रहते ही हैं। आज हम लोग ऐसे स्थान पर बैठे हैं, जहाँसे सारी दुनिया को अशान्ति से मुक्ति मिल सके, ऐसा अहिंसा का एक स्वतन्त्र दर्शन प्राप्त हुआ है। ऐसे स्थान पर मैं बैठा हूँ, जहाँ अध्यापक और विद्यार्थी ज्ञान-श्रवण के लिए उपस्थित हैं और उनके समक्ष मैं दो शब्द कह रहा हूँ। यह प्रसंग मुझे अत्यन्त स्फूर्ति दे रहा है।

गुरु-शिष्य परस्पर गुरु-शिष्य

बचपन से अब तक मैं सदा ही विद्यार्थी रहा हूँ और अध्यापक भी। इसलिए आप सब मेरी जाति के ही हैं। कह नहीं सकता कि मैं विद्यार्थी अधिक हूँ या अध्यापक ? कारण विद्यार्थी और अध्यापक दोनों एक-दूसरे के अध्यापक हुआ करते हैं। बाप और बेटे के बीच ऐसा सम्बन्ध नहीं होता। बाप बाप ही रहेगा और बेटा बेटा ही। किन्तु मित्रों के बीच ऐसा संबंध हो सकता है। भाइयों के बीच भी ऐसा संबंध हो सकता है। दोनों में परस्पर मित्र-मित्र और भाई-भाई का सम्बन्ध हो सकता है। इसी तरह विद्यार्थी और शिक्षक के बीच भी परस्पर गुरु-शिष्य-संबंध हो सकता है। यह एक मूलभूत विचार है। शिक्षक और विद्यार्थी मिलकर एक समाज बनता है और दोनों एक-दूसरे के मददगार बनते है। विद्यार्थी के बिना शिक्षक का नहीं चल सकता और न शिक्षक के बिना विद्यार्थी का ही चल सकता है। दोनों मिलकर ही समाज बनता है।

युवकों का एकमात्र आकर्षण : नवीनता

आखिर समाज बनने का उद्देश्य क्या है ? बिना उद्देश्य के तो कोई काम होता नहीं। फिर यह गुरु-शिष्य-समाज भी क्यों बनता है ? इसपर आप विचार करें तो ध्यान में आ जायगा कि आज दुनिया जिस दुःख में पड़ी है, उससे उसे उबारने और नयी दुनिया बनाने के लिए ही वे एकत्र होते हैं। पुरानी दुनिया बनी है और उसीमें यह शरीर भी बना है। किन्तु इससे पुराना समाज ही चलाने का काम नहीं करना है। नयी पीढ़ी नये काम के लिए ही हुआ करती है, पुराने काम के लिए नहीं। ऋग्वेद में एक बड़ा ही अच्छा मन्त्र आता है।

'अचितं ब्रह्मजुजुषः युवानः'

याने युवक कैसे ब्रह्म को पसन्द करते हैं, स्वीकार करते हैं ? जिस ब्रह्म का पहले चिन्तन नहीं हुआ, उसीका युवक चिन्तन करते हैं। यदि जीर्ण ब्रह्म युवकों के समक्ष रखा जाय तो उसके ब्रह्म होने के बावजूद नयी पीढ़ी को उसका कुछ भी आकर्षण नहीं हो सकता। यह युवकों का दोष न माना जायगा। इसलिए समाज में नित्य नया तत्त्व प्रकट होना चाहिए। ब्रह्म को भी नया-नया रूप धारणा करना चाहिए। यदि वह नया-नया रूप न ले सकेगा तो क्षीण हो जायगा। यास्काचार्य ने एक जगह सनातन धर्म की व्याख्या की है कि "जो नित्य नया रूप धारण कर सके, वह सनातन धर्म है।' आज तो 'सनातन धर्म' याने पुराना धर्म माना जाता है, किन्तु जो धर्म पुराना ही रूप रखना चाहता है, वह सनातन धर्म नहीं कहा जा सकता। सनातन धर्म का अर्थ है—अद्यतन धर्म, आज का धर्म, याने जिसमें आज के जमाने का रूप और तेज हो, वह युगधर्म ही सनातन धर्म है।

धर्म युगानुसार परिवर्तनशील

मनु महाराज ने एक बड़ा ही सुन्दर श्लोक लिखा है :

'अन्ये कृतयुगे धर्माः त्रेतायां द्वापरेऽपरे।
अन्ये कलियुगे धर्माः युगह्रासानुरूपतः॥'

गीता में भी भिन्न-भिन्न युगों के भिन्न-भिन्न धर्म बतलाये गये हैं। जैसे-जैसे युग बदलेगा, उसी तरह धर्म भी बदलते रहेंगे। आखिर युग क्या हैं ? पाँच हजार वर्ष या लाख वर्ष का युग नहीं होता। पीढ़ी बदलने के साथ ही युग भी बदल जाता है। हमारे शास्त्रों में चार युगों की कल्पना की गयी है। आजकल कलियुग चल रहा है। लेकिन शास्त्रकार कहते हैं कि दस वर्षों में चार युग बदल जाते हैं—१ वर्ष कलियुग, २ वर्ष द्वापर, ३ वर्ष त्रेता और ४ वर्ष कृतयुग, इस तरह १० वर्षों में चार युग हो जाते हैं। अंग्रेजी का 'कार्टर' शब्द इसी 'कृत (युग) से बना है और हम लोग जिसे इकाई (युनिट) कहते हैं, वह कलियुग है अर्थात् मापने का साधन ही कलि है। इस तरह दस वर्षों के अन्दर दस इकाइयाँ होती हैं और उनमें चार युग सतत बदलते रहते हैं। ध्यान देने की बात है कि इनमें निराशा, दुःख और आपत्ति का काल कलियुग एक ही वर्ष का होता है और कृतयुग बहुत लम्बा है। बुरा युग मानव पर अपनी अधिक सत्ता चला नहीं सकता और कृतयुग चला सकता है।

नये में पुरानी शक्ति का विलय जरूरी

किन्तु आज पुराने कृतयुग की कल्पना चल नहीं सकती। कारण यदि आज की पीढ़ी को पुरानी पीढ़ी द्वारा किये गये अच्छे काम ही करने हों तो फिर नयी पीढ़ी की जरूरत ही क्या रही ? रामावतार धनुर्धारी हुआ तो कृष्णावतार मुरलीधर। उसके बाद का बुद्धावतार तो मौन ही रहा। आखिर उत्तरोत्तर अवतार भी विकसित ही हुआ करते हैं। नया अवतार होता है

तो वह पुराने अवतार की कीमत मिटाकर ही होता है। यदि नया अवतार हो और पुराने अवतार की कीमत न घटे तो दोनों की ही कीमत घट जायगी। यदि बाप की योग्यता में हो बेटे की योग्यता समा जाय तो दोनों का जीवन अकृतार्थ हो जायगा। इसलिए बाप की कीमत बेटे को मिटानी चाहिए और गुरु की कीमत शिष्य को। शंकराचार्य के गुरु गोविन्द भगवत्पाद के बारे में लोग इतना ही जानते हैं कि वे उनके गुरुमात्र थे। शिक्षक शिष्य की कीर्ति में मिल गया। यदि गुरु का भी पंथ बन जाता है तो उससे गुरु की महिमा ही घट जाती है। इसीलिए शिष्य गुरु की महिमा अपने में समा लेता है और उनसे दो कदम आगे बढ़ता है। ऐसा होने पर ही गुरु का गौरव और शिष्य का शिष्यत्व सार्थक होता है।

बूढ़ों की यह बेतुकी शिकायत

जब नयी पीढ़ी आती है तो बूढ़े झगड़ा करते हैं। कहते हैं कि ये हमारा अनुशासन नहीं मानते। किन्तु मैं इस विषय में उनसे सहमत नहीं हो सकता। 'अनुशासन नहीं मानते' आखिर इसका अर्थ यही है न कि हमारे कहे में नहीं रहते? पर बताइये कि युवक क्यों कर आपके कहे में रहें? कारण समाज के मूल्य ही बदल गये हैं और परिस्थिति के अनुसार मूल्यों में नित्य नया परिवर्तन हुआ करता है। यदि मैं लोगों से यह कहूँ कि मैं जैसी पोशाक पहनता हूँ, वैसी ही आप भी पहनें तो क्या वह उचित होगा?

समयानुसार मूल्य-परिवर्तन स्वाभाविक

किसी जमाने में गांधीजी काठियावाड़ी पोशाक पहनते थे। उन दिनों वे चक्करदार फेंटा पहनते थे। उस समय यह देशी पोशाक मानी जाती थी और इसके प्रति हीनता की भावना थी। उन दिनों साहबों की पोशाक का ही गौरव होता था। इसीलिए गांधीजी ने उस समय किसानों की यह पोशाक पहनी। किन्तु कुछ समय बाद उन्हें लगा कि यह व्यर्थ का बोझ क्यों रखा जाय? इसलिए उसे उतारकर उन्होंने गांधी टोपी पहनी। लेकिन बाद में उसे भी उतारकर नंगे सिर ही रहने लगे। लोग भी आज गांधी टोपी छोड़कर नंगे सिर ही रहते हैं, इसमें उन्होंने क्या बुरा किया?

छात्र खुशबूदार तेल से बचें

लोग इस तरह आज बापू का अनुकरण कर गांधी टोपी छोड़ दिये तो आगे और क्या छोड़ेंगे? मैं समझता हूँ कि आगे ये लोग सिर पर जो इतने बाल रखते हैं, उन्हें भी मुड़वा देंगे? आखिर बाल भी क्यों रखा जाय? इसके पीछे तो तेल, साबुन सबका झमेला है। कितनों को तो खाने के लिए भी तेल नहीं मिलता, फिर भी बालों में तरह-तरह के सुगन्धित तेल डालते हैं, जिससे बाल असमय में पक जाते हैं। इसलिए सौन्दर्य-प्रेमी युवकों को सावधान हो जाना चाहिए। वे सौन्दर्य के लिए जिन तरह-तरह के तेलों का इस्तेमाल करते हैं, उनसे कुरूपता ही बढ़ती है। यदि तेल ही डालना हो तो गाँव का बना शुद्ध तेल ही डालना चाहिए।

शान्तिमय क्रान्ति का अर्थ

आजकल तो हर बात में दगाबाजी होने लगी है। लगभग सभी चीजों में मिलावट हो रही है। लेकिन यह कोई व्यापार नहीं कहा जा सकता। संस्कृत में इसे 'अव्यापारेषु व्यापार' कहते हैं। आखिर व्यापारी कोई बदमाश तो नहीं होते? व्यापारी का अर्थ कुशल व्यक्ति होता है। फिर वे ऐसा क्यों करते हैं? इसके कारणों पर विचार करें तो समझ में आ जायगा कि आज समाज में जो मूल्य प्रमाण माने जाते हैं, वे गलत हैं। यह समझना शिक्षकों एवं विद्यार्थियों का काम है। उन्हें बिना परीक्षण किये पुराने मूल्यों को यथास्थित रूप में ग्रहण नहीं करना चाहिए। हम चोरी को अपराध मानते हैं, पर संग्रह करनेवाले का सम्मान करते हैं। इस तरह समाज में जो एकांगी मूल्य चलते हैं, उन्हें मिटाना ही चाहिए, भले ही उनके मिटाने में समाज में कितनी ही उथल-पुथल हो जाय। आज समाज में विद्यमान कमजोरी को मिटाकर नयी समाज-रचना करनी चाहिए। इसके लिए दोषयुक्त मूल्यों से ही इस तरह मुकाबला किया जाय, जिसमें पुराने अच्छे मूल्य नष्ट न हो पायें। इसीका नाम शान्तिमय क्रान्ति या अहिंसक क्रान्ति है।

दोष-निवारण के फेर में गुणों पर ही मार न पड़े

महाभारत के सर्प-सत्र से शिक्षा मिलती है कि दोषों का निवारण करते समय हम कभी-कभी व्यर्थ ही गुणों पर भी प्रहार कर बैठते हैं। कितनी ही बार दोष गुणाश्रित हुआ करते हैं। ऐसे अवसर पर दोष को गुण से अलग कर फिर उसपर प्रहार करना चाहिए। कोई वैराग्यशील कठोर हो तो उसके वैराग्य की प्रशंसा कर कठोरता पर प्रहार करना चाहिए। अन्यथा यदि हम गुणों पर भी प्रहार करेंगे तो वे तो मिटने-वाले हैं ही नहीं, दोष को भी अपने सहवास से मिटने नहीं देंगे जैसे कि सर्प-सत्र में इन्द्र ने तक्षक को बचा लिया। इस-लिए गुण-दोष का विश्लेषण कर पुराने मूल्यों का अच्छा अंश ग्रहण करना चाहिए और बुरे अंश पर प्रहार करना चाहिए, तभी बुरे अंश का निवारण हो सकेगा। बापू इसीको अहिंसक पद्धति कहते थे। इसीलिए वे कहते थे कि अंग्रेज यहाँ शासकों के तरीके पर न रहें, बल्कि मित्र की तरह रहें। कारण, यह सच है कि अंग्रेजी राज्य दोषों से भरा है, फिर भी उनकी मित्रता भी हमारे लिए अपेक्षित है। इसी कारण जब अंग्रेज राज्य छोड़कर जाने लगे तो अहिंसक नेताओं ने उन्हें छह महीने और रहने को कहा तथा माउण्टबैटन यहाँ छह महीने और रह गये। इंग्लैण्ड के इतिहास में यह घटना स्वर्णाक्षरों में लिखी जायगी। इसमें दोनों के लिए गौरव की बात है।

दोष मिटायें और गुण ग्रहण करें

मैं कहना यह चाहता हूँ कि इसी तरह शिक्षक और विद्यार्थी मिलकर पुराने मूल्यों के दोष निकाल फेंकें और पुराने गुणों को रखें। इसी तरह नये आधुनिक दोषों को छोड़कर नये गुणों का भी संग्रह करें। इस विवेक-पद्धति का नाम ही शिक्षा है। सारासार-विवेक ही शिक्षण है। विवेकपूर्वक समाज-संशोधन के लिए ही गुरु-शिष्य का समाज बनता है। हमारा कर्तव्य है कि आधु-निक सभ्यता और पुरानी संस्कृति के दोष छोड़ दें और उनके गुण ग्रहण करें। इसके लिए हमें विचार करना होगा कि हम कौनसा अंश लें और कौनसा छोड़ दें! पुराने जमाने में 'आचारकाण्ड' बहुत अधिक रख दिया गया था। उसे जैसा का तैसा लेना ठीक न होगा। उसका सार-अंश ग्रहण करें और असार-अंश त्याग दें। जैसे छात्र प्राचीन पद्धति के अनुसार रात को जल्दी सोकर सुबह जल्दी उठे और शौच-मुखमार्जन कर पढ़ें तो उस समय एक घंटे में जो काम हो जायगा, वह रात में देर तक जगकर अधिक समय बिताने पर भी न होगा। आज सर्वत्र यही चल रहा है। इसमें सुधार होना चाहिए। यह तो मैंने एक दृष्टान्त दिया, इसी तरह हमें अपना जीवन सुधारना चाहिए।

छात्र दलीय राजनीति में भाग क्यों न लें ?

दूसरी बात, शिक्षक और विद्यार्थी पक्षमुक्त होकर चिन्तन करें। आज का यह आम सवाल है कि छात्र राजनीति में भाग लें या नहीं ? बहुतों का कहना है कि "उन्हें राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए, क्योंकि वे अपक्व (कच्ची) बुद्धि के होते हैं। अपक्व-बुद्धिवालों के लिए राजनैतिक विचार ठीक नहीं होता। परिपक्व बुद्धि से ही उसपर विचार करना चाहिए।" किन्तु इसका अर्थ तो यह होगा कि जिन बच्चों की यह निष्ठा हो कि हमारी बुद्धि परिपक्व हो गयी है, वे राजनीति में भाग ले सकते हैं। शंकराचार्य ने १६ वें वर्ष में ही शांकर भाष्य लिखा, जब कि मतदान का भी अधिकार नहीं रहता। इसलिए यह उत्तर ठीक नहीं। मैं भी यह ठीक मानता हूँ कि छात्र दलीय राजनीति में भाग ही न लें, कारण राजनीति में वह योग्यता ही नहीं कि विद्यार्थी उसे स्पर्श कर सकें। यह विद्यार्थियों के लिए शोभनीय नहीं। कारण, एक बार वे विश्व-व्यापक बुद्धिवाले बन जायँ, व्यापक और उदारचरित हो जायँ, फिर वे छोटे-छोटे क्षेत्र में काम करें तो चल सकता है। हमें गाँव और शहरों में ही सेवा करनी पड़ती है। यह काम तो छोटा होगा, लेकिन उसके लिए हमारी बुद्धि व्यापक होनी चाहिए। जब आप विश्वव्यापक वृत्ति सीख जायँ तो फिर आप अपने परिवार की ही सेवा करेंगे तो भी उसमें विश्व-विरोध न होगा। किन्तु उससे पहले आप संकुचित सेवा करेंगे तो आपकी बुद्धि भी छोटी रहेगी और सेवा भी छोटी। उससे कुछ भी लाभ न होगा। एक बार आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त कर लें तो आपकी बुद्धि सेवा के क्षेत्र में ठीक-ठीक काम कर सकती है। विश्वव्यापक बुद्धि होने के कारण नेहरूजी भले ही हिन्दुस्तान के हित का ही विचार करते हों, तो कोई हर्ज नहीं और अयूब खाँ पाकिस्तान में राजनीति में भाग लेता है तो हानि है।

पहले विश्वमानव की वृत्ति लायें

इसीलिए मैं कहता हूँ कि विद्यार्थियों में 'मैं विश्वमानव हूँ' ऐसी ही वृत्ति होनी चाहिए। विश्वव्यापक बुद्धि होने के कारण रविशंकर महाराज सर्वोदय-पात्र के लिए अहमदाबाद की गली-गली की खाक छानें तो उससे उनकी बुद्धि संकुचित नहीं हो सकती। विश्व-व्यापक बुद्धि न होने पर हम गाँव की ग्राम-पंचायत में बैठेंगे तो पंचायत (परेशानी) ही खड़ी हो जायगी। इसलिए पहले आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करें। उसके बाद आप खेती करें, प्रोफेसरी करें या और भी चाहे जो करें, कोई हर्ज नहीं। उससे किसी तरह की हानि नहीं हो सकेगी। इसलिए विद्यार्थियों को पहले विश्व-व्यापक वृत्ति ही बनानी चाहिए। इस बात पर विचार करेंगे तो आपके ध्यान में आ जायगा कि मैं क्यों कर विद्यार्थियों से पक्ष-मुक्त रहने का आग्रह करता हूँ। पक्षवाले सोचते हैं कि हम विद्यार्थियों से लाभ उठायें। लेकिन वे यह नहीं सोचते कि यदि इससे छात्र संकुचित बुद्धि के हो जायँगे तो समाज का लाभ कैसे हो सकेगा ?

विश्व-राजनीति पर निरपेक्ष मनन करें

छात्रों को चाहिए कि वे अपने यहाँकी राजनीति का अध्ययन करें और साथ ही विश्व की राजनीति का भी गहरा अध्ययन करें। सोचें कि आज ये राष्ट्र एक-दूसरे के भय से मुक्ति पाने के लिए सेना बढ़ा रहे हैं तो क्या इस भय से मुक्ति मिल सकेगी ? क्या सेना से रक्षण हो सकेगा ? अनेक प्रमाणों से स्पष्ट हो चुका है कि विज्ञान-युग में सेना से, हिंसा से रक्षा की आशा करना दुराशा ही है। आज एकमात्र करुणा ही हमारी रक्षक देवता है। इसमें यह समझने की बुद्धि होनी चाहिए।

पहले विश्वव्यापक दृष्टि ही संग्राह्य

सारांश, आज विश्वव्यापक दृष्टि के बिना राजनीति में भाग लेना बड़ा ही खतरनाक सिद्ध हो रहा है। क्या आज के चुनावों में स्थितप्रज्ञ ही चुने जाते हैं ? वे कभी चुनकर नहीं आ सकते। कारण, साधारण बुद्धिवाला यह समझ ही नहीं पाता कि स्थितप्रज्ञ कौन है ? इसलिए साधारण जनता के बीच जो श्रेष्ठ होता है, वही चुनकर आता है। इन सबका विचार करने पर यही कहना पड़ता है कि छात्र अध्ययन-काल में आज के समाज की राजनीति से ऊपर उठकर चिन्तन करें। इस तरह वे करेंगे, तभी उनके ध्यान में आयेगा कि ज्ञानी पुरुष समाज को किस तरह देखता है ?

'पब्बनट्ठो व मुम्मट्ठे, धीरे बाले अवेक्खति।'

याने पर्वत पर खड़ा हुआ मानव जिस तरह नीचे काम करनेवालों को देखता है, उसी तरह ज्ञानी पुरुष अन्य लोगों को देखते हैं। स्वयं पर्वत पर खड़े होने से उन्हें बहुत व्यापक दर्शन होता है। इस तरह का व्यापक दर्शन प्राप्त कर आप समाज में आयेंगे तो समाज का कल्याण होगा।

सारांश, यह समाज एकत्र होने का एकमात्र उद्देश्य यह है कि व्यक्ति निरपेक्ष भाव से सारासार का विवेक कर सके। बड़ी-से-बड़ी भूल स्वीकार करने की हिम्मत और छोटे-से-छोटे व्यक्ति की अच्छी बात ग्रहण करने की नम्रता आनी चाहिए। यदि आप विद्यार्थी और अध्यापक ऐसा कर सके तो आप अपना कर्तव्य पूरा कर पाये, यह माना जायगा। ◆◆◆

प्रार्थना-प्रवचन

पड़ाव : बड़ोदा (बंबई-राज्य) दिनांक : २९-१०-'५८

भारत और पाकिस्तान सेना का खर्च प्रेम-खाते क्यों न करें ?

आज आपके सामने मैं एक बालक के रूप में खड़ा हूँ, ऐसा मुझे भास होता है। बचपन में दस-ग्यारह साल की उम्र से मैं बड़ोदा में रहा और मैंने बालक की आँखों से यहाँकी दुनिया देखी। मेरा खेल-कूद सब यहीं हुआ। मैं जितना घूमता था, उतना घूमनेवाले बहुत कम होते हैं, इसलिए बड़ोदा के पास-पास के पाँच-सात मील के प्रदेश में मैं करीब रोज ही घूमता था और बड़ोदा की शायद ही कोई ऐसी बोळ होगी, गली-कूची होगी, महल्ला होगा, जहाँ मैं नहीं गया हूँगा। इस शहर के बारे में मेरे मन में एक नाहक आत्मीयता हो गयी है, यह मुझे कबूल करना चाहिए। अभी तो मैं एक अत्यन्त व्यापक कार्यक्रम लेकर घूमता हूँ, इसलिए इसमें कोई संकुचित या सीमित आत्मीयता के लिए अवकाश नहीं है। तिसपर भी कुछ स्मरण ऐसे होते हैं, जिन्हें मनुष्य भूल नहीं सकता। इस शहर के साथ मेरे जीवन में कुछ पवित्र स्मरण जुड़ गये हैं, उन्हें मैं भूल नहीं सकता हूँ। मैं अपनी थोड़ी-सी बातें आपके सामने रखूँगा। उन्हें बाल-विनोद समझकर स्वीकार कीजिये।

निर्भीक सयाजीराव महाराज

इतनी विशाल सभा देखते ही मुझे स्वभाविक ही महाराज सयाजीराव का स्मरण होता है। उस वक्त हिन्दुस्तान के दूसरे

राजा-महाराजा और ऐसे ही दूसरे लोग बहुत डर गये थे, पर इस बहादुर राजा ने ब्रिटिश सल्तनत के सामने कभी अपना सिर नहीं झुकाया। अपनी स्वतन्त्रता उन्होंने कायम रखी। अपनी प्रजा को भी उन्होंने पूरी स्वतन्त्रता दी, इसका भी अनुभव बचपन में मैंने किया था। हिन्दुस्तान के बहुत क्रांतिकारियों ने बड़ोदा में आश्रय प्राप्त किया था। जिस तरह लन्दन में दुनिया के क्रांतिकारी और स्वातन्त्र्य-प्रिय नेताओं को आश्रय मिला था, उसी तरह यहाँ भी हिन्दुस्तान के क्रान्तिकारियों को स्थान मिला था। यहाँका प्रमाण लन्दन की तुलना से कम होगा, परन्तु विचारों की स्वतन्त्रता यहाँ लोगों को रहती थी। ऐसे क्रांति-शिरोमणि का नाम कोई भूल नहीं सकता। महायोगी श्री अरविंद भी बचपन में यहाँ रहे थे। उनका व्याख्यान सुनने का अवसर मुझे मिला था। मेरे चित्त पर उस वक्त जो असर हुआ, वह अभी तक कायम है और वह असर अब बढ़ ही रहा है। ऐसे महापुरुषों को बड़ोदा में आश्रय दिया गया। सयाजीराव महाराज सारी दुनिया से अच्छे-अच्छे लोगों को चुनकर यहाँ लाते थे। जनता के साथ उनकी बड़ी घनिष्ठता थी। बाहर से आये हुए लोगों का लाभ जनता को मिले, ऐसी योजना वे करते थे। मैं मानता हूँ कि गुजरात को बनानेवाले जो दस-पाँच नाम हम इस आधुनिक युग में ले सकते हैं, उनमें सयाजीराव महाराज का नाम अवश्य होगा। अपनी प्रजा के लिए उन्होंने ऐसे काम किये, जो आज की सरकार करना चाहती है और कर रही है। जनता में और मेरे जैसे छोटे बालक के मन में जो प्रेरणा थी, वह एक विशेष प्रेरणा थी। खास करके सेन्ट्रल लाइब्रेरी में मैं घंटों जाकर बैठता था। वहाँ मुझे बहुत ज्ञान मिला। उस ज्ञान में मैं मग्न हो जाता था। उसका मुझे बहुत लाभ मिला। परन्तु मेरे हृदय में जो स्मृति अंकित हो गयी है, उसका वर्णन मैं आज करना चाहता हूँ। इसका उल्लेख मैंने इसके पहले कभी नहीं किया था।

बुद्ध भगवान की मूर्ति

महाराज सयाजीराव गायकवाड़ ने बुद्ध भगवान की एक मूर्ति बड़ोदा के एक बाग में स्थापित की थी। उस बाग को आस-पास के लोग 'ज्युबिली गार्डन' कहते थे। परन्तु मैंने उसे नाम दिया था—'बुद्धोद्यान !' मुझे बुद्ध की प्रतिमा का आकर्षण बहुत था, क्योंकि मेरे विचार बचपन में गृहत्याग के पक्के होते गये। वे विचार मुझे समर्थ रामदास के जीवन से और उपदेश से मिले थे। शंकराचार्य के विचारों का जो परिचय मुझे हुआ था, वह दृढ़ होता गया। इसका नित्य दर्शन मुझे भगवान बुद्ध की उस मूर्ति में होता था, जो अपना राज-वैभव और सांसारिक सुखों को तुच्छ समझकर जवानी में ही बाहर निकल पड़ा। केवल कारुण्य की प्रेरणा से उसने तप किया। सारी दुनिया की सेवा में उसने अपना सारा जीवन दे दिया। यह एक बहुत बड़ी मिसाल है। उस मूर्ति से मुझे बड़ी स्फूर्ति मिलती थी। इस बुद्धोद्यान में जब कि मैं बहुत छोटा-सा था, तब भी कई बार जाता था। वहाँ एकान्त नहीं रहता था, फिर भी वहाँ जाता था और उस मूर्ति को निरखता था। उसका मुझपर बहुत असर हुआ। आज भी यह मूर्ति मुझे यात्रा करने के लिए प्रेरणा देती है। धर्म-चक्र-प्रवर्तन की जो बात भगवान बुद्ध करते थे, जो करुणा लेकर वे घूमते थे, वही प्रेरणा लेकर मैं घूमता हूँ। अगर कारुण्य की प्रेरणा न हो तो बुढ़ापे में मनुष्य घूम नहीं सकता। बुद्ध भगवान की प्रेरणा लेकर मैं घूमता हूँ और घूमते-घूमते इस बड़ोदा शहर में भी आ पहुँचा हूँ।

कारुण्यमूर्ति से प्रेरणा

महाराज सयाजीराव की दृष्टि बहुत दीर्घ थी। उन्होंने गौतम बुद्ध की मूर्ति की जो स्थापना की, उसमें उनके मन में हिंदुस्तान का भावी चित्र कैसा होगा, इसका विचार पहले से ही था। वह स्थापना उसका निर्देश है। एक क्रान्तदर्शी और दीर्घदर्शी सेवक के नाते वे समझ गये थे कि भावी हिंदुस्तान बुद्ध भगवान के रास्ते पर ही जानेवाला है। अपनी सरकार को भी बुद्ध भगवान से प्रेरणा मिलती है। अशोक के चार सिंहों की मूर्ति, जो अहिंसा का प्रतीक है, उसे अपनी सरकार मान्य करती है। अपने नेता पंडित नेहरू विश्व-शांति के लिए जितना प्रयत्न हो सकता है, उतना कर रहे हैं। परन्तु इतना ही क्यों ? आप सबको भी बुद्ध भगवान से ही प्रेरणा मिलती है। यह देखने की और समझने की बहुत जरूरत है। इस जमाने मे विविध व्यक्तियों को बुद्ध भगवान से प्रेरणा मिल रही है। सयाजीराव, पंडित नेहरू, गांधीजी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, डॉ० अंबेडकर, ये लोग बिल्कुल भिन्न प्रकृति और भिन्न बुद्धिवाले हैं, फिर भी बुद्ध भगवान का चरित्र और उपदेश इन्हें खींचता है। यह क्यों ? इसीलिए कि अभी दुनिया की जो स्थिति है, उस स्थिति से दुनिया को बचानेवाली अगर कोई शक्ति हो सकती है तो वह गौतम बुद्ध का संदेश है और यह संदेश है :

'न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो ॥'

'वैर करने से वैर नहीं मिटता है। दुश्मनी से दुश्मनी नहीं मिटती है।' यह जो भगवान बुद्ध का संदेश था, उस संदेश की आज दुनिया को अत्यन्त आवश्यकता है। अब गौतम बुद्ध का अहिंसा का युग, जिसे 'सर्वोदय का युग कहते हैं, आ रहा है। यह समझने की बात है।

धर्म-कार्य में बौद्धावतार का स्मरण

अपने धर्मशास्त्र में जब लोग धार्मिक कार्य करते हैं, उसके आरम्भ में बोला जाता है, अस्य ब्रह्मणो द्वितीये परार्धे कलियुगे कलिप्रथमचरणे बौद्धावतारे। यह जो धर्म-कार्य मैं करता हूँ, वह मन्वन्तर में और बुद्धावतार में कर रहा हूँ। आज बुद्ध-अवतार चलता है। बुद्ध भगवान करुणा और अहिंसा के अवतार थे। करुणा और अहिंसा की शक्ति अभी तक प्रकट नहीं हुई थी। उसकी रुचि प्रकट हुई थी। रुचि और शक्ति में फर्क है। अभी तक प्रेम, करुणा, अहिंसा—ये सारे रुचिदायक शब्द थे। मनुष्य को अपने जीवन में प्रेम, करुणा आदि प्रकट करने में बहुत रस आता है। उसका जीवन रसमय होता है। प्रेम और करुणा के बिना उसका जीवन नीरस और शुष्क हो जाता है। जीवन को करुणा से रस मिलता है। यह रुचिकर वस्तु है, इसलिए मनुष्य के ध्यान में आ गयी है। परन्तु करुणा एक महान शक्ति है, दुनिया को रक्षण देने की शक्ति उसमें पड़ी है। निर्वैरता में, अहिंसा में करुणा भरी है—इसका भान सामुदायिक तौर पर अभी तक समाज को नहीं हुआ था। गांधीजी उसका थोड़ा-सा प्रयत्न करते थे। उन्होंने राजनैतिक क्षेत्र में थोड़े प्रयोग किये थे, इसलिए उन्हें उसकी थोड़ी-सी झाँकी मिल गयी थी। परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में और राष्ट्रीय क्षेत्र में आगे जाकर अहिंसा और करुणा की शक्ति किस तरह काम कर सकती है, शक्ति के रूप में सारी दुनिया को वह किस तरह रक्षण दे सकती है, इसका भान अभी तक दुनिया को नहीं हुआ था, पर अब होनेवाला है। हम सबको उसके लिए तैयार रहना है।

अहिंसा और करुणा की शक्ति

शस्त्र-शक्ति से दुनिया का कोई भी मसला हल होता है, ऐसा नहीं मान सकते हैं। ऐसा विश्वास भी अब नहीं रहा है। परन्तु केवल अहिंसा और करुणा की शक्ति से दुनिया की रक्षा होगी,

इसका भी दर्शन नहीं होता है। हिंसाशक्ति दुनिया को रक्षण देने के लिए असमर्थ है, यह अब सर्वमान्य वस्तु है। फिर भी शस्त्रास्त्र बहुत बढ़ गये हैं। वे तो पहले से चले आये हैं, इसलिए बढ़ते हैं। दूसरा कुछ सूझता नहीं है, इसलिए शस्त्रास्त्र बढ़ते हैं। परन्तु अब उसपर से विश्वास उठ गया है और हिंसा पर से भी विश्वास उठ गया है। पर अहिंसा और अहिंसा की शक्ति पर अभी विश्वास बैठा नहीं है। ऐसी मध्यावस्था में दुनिया का चित्त अभी दोलायमान है। इस वक्त जो देश अपना दिमाग स्थिर रख सकेगा और निश्चित रूप से अहिंसा की शक्ति विकसित करेगा, वह देश स्वयं तो बच ही जायगा, दुनिया को भी बचायेगा। इसका प्रत्यक्ष अनुभव मुझे इस भूदान, ग्रामदान-यात्रा में बहुत बार हो गया है। दुनिया के पाँच-पचीस राष्ट्रों के लोग इसे देखने आते हैं और भूदान-यात्रा में साथ रहते हैं। यहाँपर वह अहिंसा की, करुणा की और परस्पर सहकारिता की एक शक्ति निर्माण हो रही है। यह शक्ति तारिणी शक्ति है, ऐसा उन्हें दीखता है। वह शक्ति, नवीनता की शक्ति भूदान और ग्रामदान के कार्य में कुछ प्रकट होती है, ऐसा दुनिया के लोगों को भास होता है। लोग इससे खिंचकर आते हैं और उन्हें लगता है कि हिंदुस्तान में यह एक चमत्कार हो रहा है। ऐसा नहीं कि कोई बहुत बड़ा काम हो गया है। थोड़ा-सा आरम्भ हुआ है, पर वह आरम्भ कैसा है? भगवान ने गीता में कहा है कि 'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।' इस धर्म का अल्प आचरण भी महान भय से आपको बचायेगा। इस तरह यह अल्पारंभ हो गया है, पर दुनिया को बचानेवाली शक्ति इसमें प्रकट हो रही है। नवीन शक्ति का अवतार हो रहा है। ऐसे थोड़े से काम का भी बड़ा परिणाम यह आया है कि सारे विश्व में उसके लिए आकांक्षा पैदा हो गयी है। यह एक बड़ी बात है। दुनिया की मनोभूमिका तप गयी है और इस पानी को चूसने के लिए एक चाह पैदा हो गयी है। ऐसी मनोभूमिका आज तैयार हो गयी है। ऐसी स्थिति में मैं कहना चाहता हूँ कि यह बड़ोदा नगरी ऐसी शक्ति प्रकट कर सकती है, जो सारी दुनिया के लिए अनुकरणीय हो सकती है। यह शक्ति बड़ोदा में है, ऐसा मैं मानता हूँ। बड़ोदा में यह शक्ति पड़ी है, यह मैं समझा नहीं सकता, पर मेरी श्रद्धा काम कर रही है। पिछले साल बंगलोर में यहाँके कुछ भाई मिले थे और शांति-सेना की बात निकली थी, उस समय मैंने यह आशा प्रकट की थी कि बड़ोदा नगरी में सारे विश्व के लिए शांति-सेना हो सकती है। यह वाक्य अब आपको यथार्थ साबित करना है। आपको यह काम मैं सौंपता हूँ। यह वाक्य आपको अपने जीवन में सिद्ध करना है। आप बड़ोदा नगरी से करुणा और शांति की शक्ति सारी दुनिया में फैला सकते हैं। आपको उसे फैलाना चाहिए। ऐसी महत्त्वाकांक्षा से बुद्ध भगवान की मूर्ति यहाँ खड़ी की गयी है।

भारत में तीन अवतार

बुद्ध भगवान की यह मूर्ति इस जमाने का अवतार है। अपने हिंदुस्तान में एक के बाद एक तीन अवतार हुए। रामचन्द्र का अवतार सत्य-मूर्ति है, कृष्ण का अवतार प्रेम-मूर्ति है, गौतम बुद्ध का अवतार करुणा-मूर्ति है, तो सत्य, प्रेम और करुणा ऐसे तीन गुणों का अवतार एक के बाद एक हिन्दुस्तान में हुआ। सत्यमूलक प्रेमप्रधान करुणा का राज्य आयेगा, ऐसी स्थिति दुनिया में निर्माण हुई है। 'सत्यमेव जयते' यह अपनी सरकार का सिद्धान्त है। जय के लिए दूसरे साधन नहीं लेने हैं। सत्यमय साधन हो। जो हाथ में है, उसे हम निश्चयपूर्वक, विश्वासपूर्वक विकसित करें। अगर हम प्रेम पर विश्वास रखेंगे तो यह प्रेम अत्यन्त क्रूर वैर को क्लेश को और भी शान्त कर सकता है।

गाढ़ अंधकार में प्रकाश की तीव्रता

बहुत लोग मुझसे पूछते हैं कि "अंग्रेज लोग तो सुधरे हुए, करुणा रखनेवाले थे, इसीलिए वे आपका सत्याग्रह समझ सके। पर मान लो कि जर्मनी के साथ या नाजियों के साथ आपका मुकाबला होता, अत्यन्त क्रूर कर्म करनेवाले और प्रेम-शक्ति और अहिंसा-शक्ति बिल्कुल न माननेवाले लोगों के साथ आपका मुकाबला होता तो आपका सत्याग्रह चलता?" मैं उसके उत्तर में कहता हूँ कि जर्मन लोग विशेष क्रूर होते हैं, ऐसा मैं बिल्कुल नहीं मानता। पर क्षणभर को ऐसा मान भी लीजिये तो मैं कहता हूँ कि सच्चा सत्याग्रह उनके सामने अच्छी तरह से चलता, ज्यादा अच्छा चलता। गाढ़ अन्धकार में दीपक अधिक चमक उठता है। सामने गाढ़ अन्धकार न हो तो दीपक का तेज उतना ज्यादा नहीं दीखता है। इसलिए सामने अगर अत्यन्त क्रूरता हो और उसका मुकाबला करुणा के साथ हो तो सहज ही सामनेवाला पराभूत हो जाता है। सामनेवाले में जितनी ज्यादा कठोरता है, दया, करुणा, क्षमा का उतना ही ज्यादा अवकाश है, ऐसा समझना चाहिए। परन्तु ऐसे शाब्दिक जवाब से समाधान नहीं होता। यह शक्ति हमें प्रकट करनी चाहिए।

सेना पर भारी खर्च

हमारे देश में सेना पर तीन सौ करोड़ रुपये का खर्च हर साल होता है। अंग्रेजों के राज्य में स्वराज्य की माँग करते समय हम कहते थे कि स्वराज्य मिलने के बाद अंग्रेजों के जमाने में सेना पर जो सात करोड़ रुपयों का खर्च हो रहा है, वह हम नहीं करेंगे। सेना का खर्च इतना नहीं करेंगे। स्वराज्य के बाद यह सारा खर्च हम बचा सकते हैं, इस तरह की हम बातें करते थे। कांग्रेस के कुछ प्रस्ताव भी पास हुए थे कि सैन्य का कुछ खर्च कम होना चाहिए। स्वराज्य के बाद हिन्दुस्तान में दस साल बीत गये हैं, पर हिन्दुस्तान की सेना के पीछे तीन सौ करोड़ रुपयों का खर्च हो ही रहा है।

भारत और पाकिस्तान भाई-भाई

अपना खर्च चार सौ करोड़ रुपयों का होता है। पाकिस्तान का खर्च सौ करोड़ रुपयों का होता है। वह खर्च भी अपना ही खर्च है, ऐसा अगर हम नहीं मानते हैं तो यह केवल मूर्खता ही है। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान ये दोनों हैं तो एक ही। फिर भले ही व्यवस्था के लिए दो अलग-अलग राज्य-विभाग बन गये हों। हृदय तो दोनों का एक ही है। हिन्दुस्तान के भाई और पाकिस्तान के भाई, दोनों सगे भाई हैं और दोनों देशों में मिलाकर जो खर्च होता है, वह अपना ही खर्च है। पाकिस्तान में आज जो स्थिति है, वह जिस संकट से आज परेशान है, उसके लिए हम सबको सहानुभूति होनी चाहिए। हमें समझना चाहिए कि यह संकट हम पर ही है। हम यह नहीं मान सकते हैं कि पाकिस्तान के लोग अपने से अलग हैं। ऐसा मानना गलत है। अपने देश के राजनैतिक विभाग हो गये हैं तो क्या हुआ? एक-दूसरे के डर से हम सेना के पीछे चार सौ करोड़ रुपयों का खर्च करते हैं। मेरे मन में तो कभी-कभी आता है कि यह सारा खर्च प्रेम-खाते क्यों न करें? इतना बड़ा खर्च प्रेम-खाते करने का निश्चय करेंगे तो आप क्या मानते हैं कि दुनिया में नहीं जी सकेंगे? आज तो अमेरिका रूस के डर से सेना का खर्च करता है और रूस अमेरिका के डर से अमेरिका के पीछे सेना का खर्च करता

है। मैं कहता हूँ कि डर-खाते इतना खर्च करते हो, इससे अच्छा यह है कि विश्वासपूर्वक प्रेम-खाते इतना पैसा खर्च करो। मान लो, अगर हम निश्चय करते हैं कि दुनिया के प्रेम के लिए और सेवा के लिए इतना खर्च हम करेंगे, तो एक क्षण में सारी दुनिया का रूपान्तर हो जायगा। पर इसके लिए अन्दर से सामर्थ्य प्रकट होना चाहिए। इसके लिए सूझना चाहिए, सूझ चाहिए, कल्पना-शक्ति चाहिए।

सेना हटाने का साहस करें

आज दुनिया की परिस्थिति ऐसी है कि कोई भी राष्ट्र अगर लश्कर को हटाने की हिम्मत करता है तो यह केवल हिम्मत ही साबित नहीं होगी, उल्टे सयानेपन का कदम ही साबित होगा। मैं पूछना चाहता हूँ कि क्या यह हिम्मत भारत कर सकता है? भारत कर सकता है, अगर हम सब ऐसा भारत निर्माण करें, केवल सरकार नहीं, जनता ऐसी हिम्मत बताये और निर्णय करे कि हम हिन्दुस्तान के अन्दर अंतर्गत शांति के लिए कभी भी सेना का, सिपाहियों का या पुलिस का उपयोग नहीं करेंगे। यह अगर हम हिन्दुस्तान में सिद्ध कर सकते हैं तो अपने देश की, अपने समाज की एक ऐसी शक्ति प्रकट होगी, जो सारी दुनिया को बचा सकती है। इसके लिए मेरे हृदय में बड़ी तड़पन है। मेरे मन में यह देखकर बड़ी वेदना होती है कि हमारा देश कितनी भयानक स्थिति में आ गया है कि उसे तीन सौ करोड़ रुपयों का खर्च सेना के पीछे करना पड़ता है। दो करोड़ रुपया पचपन लाख नौकरों के लिए खर्च होता है। डेढ़ सौ करोड़ रुपया बाहर से अनाज मँगाने में खर्च होता है।

वेद में खेती की आज्ञा

'अक्षैर् मा दिव्यः कृषिमित् कृषस्व।' वेद की आज्ञा है कि तू खेती कर। खेती में जो मिले, वह बहुत है, ऐसा मानकर तू खेती कर। हमारे जैसे कृषिप्रधान देश में जहाँ वेद ने ऐसी आज्ञा दी है, और काम करनेवाले सत्तर करोड़ हाथ हैं, वहाँ भी अगर हम परदेश से अन्न मँगवाकर खायें, तो हमारे जीवन को धिक्कार है। इसमें अपने ऋषियों की आज्ञा का विरोध होता है। ऋषि ने आज्ञा दी है: 'अन्नं बहु कुर्वीत' तद् व्रतम्।' 'अन्न खूब पैदा करो और ऐसा व्रत ले लो।' जो ग्रन्थ ब्रह्मविद्या के लिए निर्माण हुआ है, वह उपनिषद् ऐसी आज्ञा करता है कि आपको व्रत लेना चाहिए कि अन्न हम बहुत पैदा करेंगे। इसके आगे वह कहता है—यया कया च विधया अन्नं बहु कुर्वीत।' 'जिस किसी पद्धति से अन्न बढ़ा सकते हो, उस पद्धति से अनाज बढ़ाना चाहिए।' उपनिषद में कृषि-पद्धति के बारे में आग्रह नहीं है, क्योंकि वह जानता है कि अगर अन्न की कमी होगी, तो दुनिया में कारुण्य कम होगा। इसलिए अन्न तो भरपूर चाहिए। किसी भी घर में खाना तो मिलना ही चाहिए।

रास्ते से जाते हुए किसी बालक को भूख लगे, तो वह किसी भी घर में जाकर कहे कि "माँ, मुझे भूख लगी है" और माँ कहे कि "आ बेटा! ले, यह खा!" ऐसी माँ हर घर में होनी चाहिए। अन्न क्या कोई बेचने की वस्तु है? अन्न तो सबका है। इसलिए अन्न के बारे में अपने शास्त्रकारों ने हमेशा जोर देकर ही कहा है। जैसे हवा, पानी मुक्त है और सबको मिलता है, उसी तरह जमीन भी सबके लिए होनी चाहिए।

अन्न का आयात शर्म की बात

ऐसी अन्न-वृद्धि का आदेश जिस देश में था, ऐसे कृषि-प्रधान देश में आज डेढ़-सौ करोड़ रुपयों का अनाज मँगाया जाता है, यह हमारे देश के लिए कितनी शर्म की बात है? इसकी हमें शर्म क्यों नहीं लगनी चाहिए? हम इसे सहन क्यों करते हैं? क्या हम यह सारा दूर नहीं कर सकते हैं? इस परिस्थिति को हम सुधार सकते हैं, ऐसा भास आज प्रजा को नहीं है। आज प्रजा इतनी दीन, पराधीन और निःसत्त्व हो गयी है कि वह सोचती है कि हम कुछ नहीं कर सकते हैं, जो कुछ होगा, वह सरकार के मार्फत ही होगा। भगवान का जितना नाम नहीं लिया जाता, उतना सरकार का नाम लिया जाता है। सरकार ने आज भगवान का स्थान लिया है। हमारे लिए आज एक ही धन्धा रह गया है। सरकार अच्छा काम करती है तो उसकी स्तुति करना और अच्छा काम नहीं करती तो उसकी निन्दा करना। सरकार की स्तुति और निन्दा के सिवाय हमारा दूसरा धंधा ही नहीं है। इस स्थिति को हम सुधार सकते हैं।

नाममात्र की लोकशाही

जिस तरह सरकार हमारी परोक्ष या अप्रत्यक्ष शक्ति है, उसी तरह हममें अपनी स्वयं की कोई शक्ति है कि नहीं? अपने नौकरों को मैं कुछ काम देता हूँ तो नौकर तो वह काम करेगा, पर सवाल यह है कि मैं कुछ कर सकता हूँ कि नहीं? आप जिन लोगों को चुनकर सरकार में भेजते हैं, वे आपके नौकर हैं और आप उनके स्वामी हैं। आप जो कुछ कहेंगे, वह उन्हें करना पड़ेगा। परन्तु मालिक अगर बिल्कुल निकम्मा और दुर्बल हो जाय तो वह मालिक नहीं रहेगा, वह नौकरों का भी नौकर हो जायगा। जैसे प्यास लगने पर नौकर पानी पिलायेगा, तब पानी पिया जायगा, मालिक स्वयं उठकर पानी नहीं पीयेगा। वह नौकर को पुकारता है, नौकर कहता है, "हाँ जी, लाता हूँ" ऐसा कहकर वह चला जाता है। अब पाँच मिनट हो गये और मालिक प्यासा ही बैठा है तो ऐसा मालिक गुलाम का भी गुलाम हो जाता है। जिस मनुष्य का काम नौकर ही करता है, वह खुद गुलाम का गुलाम बन जाता है। इसी तरह जो प्रजा ऐसा कहेगी कि हमारे नौकर ही सब कुछ करेंगे, हम नहीं कर सकेंगे, वह प्रजा गुलाम बन जायगी। उसकी लोकशाही नाममात्र की होगी। सच्ची लोकशाही में जीवन मूल्य-स्थापन करने का काम मुख्यतः जनता स्वयं करे गौण कार्य अपने नौकरों पर छोड़े। प्रतिनिधियों पर आपने क्या काम सौंपा है, यह आप नहीं जानते, ऐसा नहीं। पर जानते हुए भी आप नहीं जानते हैं, आज आपकी ऐसी हालत है।

महत्त्वपूर्ण कार्य जनता स्वयं करे

सारा धर्म-कार्य धार्मिक पुरुषों, मुल्लाओं, ब्राह्मणों और बिशपों को करना चाहिए, ऐसा हम समझते हैं। उनको हमने यह काम सौंप दिया है। सामाजिक कार्य भी हमने अपने प्रतिनिधियों को सौंप दिया है। यों हमने दो प्रतिनिधि चुने हैं। हम धर्म-कार्य भी नहीं करेंगे और समाज-कार्य भी नहीं करेंगे। आप मानते हैं कि यह सारा काम हमारे प्रतिनिधि करेंगे। सवाल है कि तब आप क्या करेंगे? आपके हाथ में क्या रहेगा? आपको अपने हाथ में वह काम रखना चाहिए, जो रखने जैसा है। जिसे हम महान कार्य मानते हैं, वह हम नौकरों पर छोड़ते हैं तो हमसे बढ़कर मूरख कौन है? हम धर्म-कार्य और समाज की सेवा जैसे महत्त्व के काम प्रतिनिधि और सरकार पर छोड़ते हैं और खाने-पीने का काम अपने हाथ में रखते हैं। यह कार्य हमने अपने प्रतिनिधियों पर नहीं सौंपा है। यही हमारी बहुत बड़ी कृपा है। नहीं तो हम अपनी सरकार से कहते कि हमारी ओर से आप ही खाना भी खा लीजिये। इससे यह साबित होता है कि अभी हमारी अक्ल कायम है और जिसे हम महत्त्व का कार्य मानते हैं, उसे हम

प्रतिनिधियों पर नहीं छोड़ते हैं। तो आपसे मेरी प्रार्थना है कि मेरे प्यारे भाइयो, जिस तरह खाने-पीने का महत्त्वपूर्ण कार्य हम प्रतिनिधियों को नहीं सौंपते हैं, उसी तरह समाज में शान्ति-स्थापन का महत्त्वपूर्ण कार्य भी हमें सरकार को नहीं सौंपना चाहिए।

बड़ोदा में शिव-शक्ति प्रकट हो

मैंने बँगलोर में कहा था कि बड़ोदा शान्तिसेना का उत्तम-से-उत्तम केन्द्र हो सकता है। मेरी माँग है कि शान्ति-सेना का यह विचार बड़ोदा के नागरिक उठा लें और इसके लिए हर घर में सर्वोदय-पात्र रखें। यहाँ करीब-करीब चालीस हजार कुटुंब हैं। यहाँ चालीस-पचास फीसदी नहीं चाहिए, सौ फीसदी सर्वोदय-पात्र चाहिए। बड़ोदा से मुझे निष्पक्ष, निर्वैर और निर्भय शांन्ति-सैनिक मिलने चाहिए। पाँच हजार मनुष्यों के लिए एक शान्ति-सैनिक का हिसाब है। सारे भारत में ऐसे पचहत्तर हजार मनुष्य खड़े करना चाहता हूँ। हमें ऐसी एक शान्ति-सेना, सेवा-सेना, भक्ति-सेना सारे भारत में खड़ी करनी है। बड़ोदा शहर की बारह लाख की लोक-संख्या है। इसके लिए मुझे ढ़ाई सौ सेवक चाहिए। वे आप खड़े कीजिये और इस कार्य की सम्मति के लिए, अहिंसा की सम्मति के तौर पर बड़ोदा जिले में हर घर में सर्वोदय-पात्र की योजना कीजिये। ऐसी योजना करके आप हिन्दुस्तान में एक शिव-शक्ति प्रकट कीजिये और उसकी महिमा बड़ोदा में दिखाइये।

मैं मानता हूँ कि बड़ोदा में ज्यादा दिन रहता तो आनंद ही होता, पर दूसरी बाजू से देखा जाय तो बड़ोदा में एक भी दिन रहने की जरूरत नहीं है, क्योंकि ग्यारह साल मैं यहाँ रह चुका हूँ। तो अब इसमें एक दिन ज्यादा जोड़कर क्या करना है? मैं आपका हूँ और आप मेरे हैं और हम सब प्रभु के हैं, ऐसी भावना से यह काम उठा लीजिये।

पाकिस्तान में अहिंसा फैले

आज एक भाई ने सवाल पूछा कि आप पाकिस्तान में जाना चाहते हैं क्या? मैं क्या चाहता हूँ कि यह मैं आपको बताता हूँ। मैं पाकिस्तान जाना नहीं चाहता, मैं पाकिस्तान को अपने पास लाना चाहता हूँ। इसलिए कि अहिंसा का विचार अगर पाकिस्तान अपनाये तो पाकिस्तान की शक्ति शत-गुणित होगी। परन्तु जब तक हिन्दुस्तान में मैं ऐसा विश्वास पैदा न करूँ, तब तक पाकिस्तान में मैं यह विश्वास कैसे पैदा कर सकूँगा? इसलिए हिन्दुस्तान के लोग पाकिस्तान को यह बता दें कि आपके साथ हमारा जरा भी वैर नहीं है। इतना ही नहीं, हमें आपके लिए प्रेम है, हम आपके हैं और आप हमारे हैं तथा हम और आप मिलकर विश्व-शांति के लिए काम करेंगे, ऐसी हमें तड़पन है।

एकरस समाज बनायें

अपने देश के कुछ लोग नीचे पड़े हैं। इन सबको अत्यन्त प्रेम से हमें अपने में समा लेना चाहिए। हरिजन, आदिवासी, मुसलमान—ऐसा कोई भेद न रहे। जो कोई हमारे हैं, वे सब मिलकर एक-रस समाज हैं। ऐसा एक समाज बनायेंगे तो देश में भारी शांति-शक्ति प्रकट होगी। मेरी इस वासना का उद्गम-स्थान बुद्ध भगवान की मूर्ति है और कुछ थोड़े नजदीक से मैं देखता हूँ तो उसका उद्गम-स्थान महात्मा गांधी हैं। उन्होंने एक बार शान्ति-सेना का आवाहन किया था, परन्तु तब शान्ति-सेना में बहुत मनुष्य भरती नहीं हुए थे। सिर्फ एक ही मनुष्य भरती हुआ था और वह मनुष्य था स्वयं महात्मा गांधी। महात्मा गांधी स्वयं ही सैनिक थे और स्वयं ही सेनापति थे। इस सेनापति ने सैनिक को आज्ञा दी कि 'तू कर और मर।' ऐसा करके गांधीजी मर गये। वे शान्ति-सैनिक और शान्ति-सेनापति के दोनों काम पूरे अर्थ में पूर्ण करके चले गये। आप सबको शान्ति-सेना में दाखिल होकर शांत भाव से समाज की सेवा के लिए, समाज की रक्षा के लिए, जरूरत पड़े तो अपना जीवन भी खतरे में डालकर काम करना होगा। डरना आपको शोभा नहीं देगा। गुजरात में अगर अहिंसा की शक्ति नहीं होगी तो दूसरी कौनसी शक्ति गुजरात में है? गुजरात ने वैष्णव और जैन-उपासना विकसित की है। इसमें हिंसा के लिए कोई अवकाश नहीं है। जब गुजरात हिंसा को स्थान नहीं देता है तो स्वाभाविक ही हिंसा की विरोधी उपासना और अहिंसामूलक जीवन-पद्धति लोग अपनायेंगे। ऐसा नहीं होगा तो समझना होगा कि अहिंसा का हिंदुस्तान में और दुनिया में कुछ नहीं चलेगा, फिर चाहे जितना चरखा चलाओ। खादी तभी टिकेगी, जब अहिंसा टिकेगी। खादी को बचाने के लिए आपको अहिंसा का आविष्कार करना होगा और भारत में एक शान्ति-शक्ति निर्माण करनी होगी।

शांति-सेना की वासना पूरी करें

मुझे यह कबूल करना चाहिए कि इस बालक की वासना बड़ोदा में बनी है। इसीलिए आज सुबह रास्ते में स्फूर्ति हुई तो चलने के बदले मैं दौड़ने लगा। दो बार दौड़ा। मन में था कि बड़ोदा के इस रास्ते पर से बचपन में बहुत बार दौड़ा हूँ तो अब क्या बूढ़ा हो गया हूँ, जो यहाँ पर न दौड़ूँ? दौड़ने पर ही तो यह बात सच्ची मानी जायगी कि बड़ोदा में मैं बालक था, नहीं तो यह गलत है। बीच में स्टेट लाइब्रेरी आयी। वहाँ जाने का कार्य-क्रम नहीं था, फिर भी मैं वहाँ गया। सेन्ट्रल लाइब्रेरी के पहले यह लाइब्रेरी बनी है। उस वक्त हमारे घर के नजदीक ही यह स्टेट लाइब्रेरी थी। मैं रोज वहाँ जाकर बैठता और किताबें और अखबार पढ़ता था। मुझे लगा कि मैं वहाँ जाकर देख आऊँ। इसलिए मैं गया। कल सुबह मैं यहाँसे जाऊँगा। परन्तु मेरे मन में इस शहर का जो स्थान है, वह इस जन्म के लिए तो पूर्ण है। दूसरा जन्म लेने की मुझमें हिम्मत नहीं और वासना भी नहीं। जब मैं कल यहाँसे जाऊँगा तो फिर वापस कब आऊँगा, यह नहीं कह सकता। पैदल चलते-चलते मैं सारे भारत में घूमना चाहता हूँ। प्रभु अगर यह माने और फिर कभी मैं यहाँ आऊँ तो आनन्द होगा। पर आज मेरी शांति-सेना की वासना सर्वोदय-पात्र के आधार पर आप सब बड़ोदा में पूरी करें और फिर मुझसे कहें कि "तुम्हारी एक वासना हमने पूरी की है तो फिर से बालक बनकर यहाँ खेलने के लिए आओ।" ऐसा आमंत्रण आप मुझे दें, यही मैं चाहता हूँ।

◆◆◆

अनुक्रम

१. हरिजन सेवा में····	पालम	२७ दिसंबर	२५
२. राजनीति से····	साबरमती	२१ दिसंबर	२६
३. भारत और····	बड़ोदा	२९ अक्तूबर	२८

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित।
पता: गोलघर, वाराणसी (उ० प्र०) फोन: १३९१ तार: 'सर्व-सेवा' वाराणसी